



हिंदी उपन्यास आलोचना का वर्तमान : एक परिचय

यदुवंश यादव

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र, भारत।

प्रस्तावना

सवा सौ साल से भी अधिक के भारतीय हिंदी उपन्यास लेखन परंपरा ने भारत को लगभग सभी दृष्टियों से देखा है। हिंदी उपन्यास एक लम्बे सफ़र से गुजरने के बाद विस्तार के उस छोर पर पहुंच गया है जहां सिर्फ आगे - पीछे देखना ही काफी नहीं रह जाता। अपनी पूर्णता में औपन्यासिकता को आंकने के लिए उन तमाम प्राचीन संस्कृतियों की तरफ भी देखना ज़रूरी हो जाता है जिनमें औपन्यासिक मानसिकता और कल्पनाशीलता आज की घेरेबंदियों से हमें मुक्त करती है। धर्म के प्रति हमारे आग्रह आज वैसे नहीं रहे जैसे कि हम अपने प्राचीन काव्यों में वर्णित नायकों और कथानकों को केवल पूजा की वस्तु समझें। उनके चरित्र, परिस्थितियां और दर्शन अपने तमाम धार्मिक आग्रहों से मुक्त होकर हमारे लिए अपने सामाजिक और राजनैतिक संदर्भों में प्रकट होते हैं। अपनी महत्ता व रूप के अनुसार इस विधा ने प्रत्येक विषय पर अपने रचना संसार को विकसित किया है और समयानुसार अपनी रचनाप्रक्रिया में समाज के अनुकूल बदलाव भी लाया। जैसा कि उपन्यास न केवल एक रचना होती है अपितु वह स्वयं एक समाज, जीवन, मनुष्य, सभ्यता आदि होता है, इसलिए उसमें एकात्मकता तो हो ही नहीं सकती, वह इंद्रधनुषी होता है, एक बड़े वितान को अपने में समाहित किए होता है। इस विधा की सबसे बड़ी खासियत यह रही कि यह बड़े वितान को लोकतांत्रिक तरीके से गढ़ता है। भारतीय परिवेश में अनेकता का पुट होते हुए भी हिंदी उपन्यासों में हमें किसी भी प्रकार का विघटन नहीं दिखाई देता। इस विधा की सबसे बड़ी विशेषता यह रही कि इसने एक सेक्युलर समाज की स्थापना में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। विरोध के क्षणों में भी भारतीय उपन्यास सेक्युलर होने की तरफ प्रतिबद्ध रहा। इसने भारतीय समाज व संस्कृति को जेहादी न होने दिया।

जब भी किसी चीज की शुरुआत होती है तो वह निश्चित रूप से अपने अतीत को लिए हुए, वर्तमान के साथ भविष्योन्मुखी होती है। यही बात 9वें दशक के उपन्यासों के साथ भी हुई। इस दौर के उपन्यासों ने अपने पूर्ववर्ती प्रक्रिया व संरचना को आत्मसात करते हुए वर्तमान की स्थितियों में आए बदलाव के साथ - साथ भविष्य की ओर दृष्टि डाली। अतीत की कथा - वस्तु, इतिहासदृष्टि आदि चीजों को इसने लिया लेकिन ठीक उसी प्रकार नहीं, बल्कि उसको एक नए रूप में जिसमें उसकी वर्तमान अर्थवत्ता शामिल थी। इतिहास को ठीक उसी दृष्टिकोण से नहीं देखा गया जिस प्रकार का वह था, बल्कि उसकी खामियों को उजागर करते हुए उसके रिक्त स्थान को भरने की कोशिश की गई। वर्तमान की स्थितियां बहुत तेजी से बादल रहीं थीं। इस दौर के उपन्यासों ने तेजी से बदलती परिस्थितियों को पकड़ा और उनको अपनी रचना का विषय बनाया। विकास का नया मॉडल, रोजगार, राजनीति, युवमान, विमर्शों की नई स्थितियां, सांप्रदायिकता का नया स्वरूप, मीडिया चरित्र, तकनीक आदि ऐसे कई विषय थे जिनको लेकर उपन्यास लिखे गए। ऐसा नहीं था कि इससे पहले ये सारी चीजें नहीं थी, परंतु पूंजी और विकास के नाम पर हो रहे जिस झूठे प्रचार को समाज पर उड़ला जा रहा था उसका एक तार्किक चित्रण इस दौर के उपन्यास प्रस्तुत करते हैं। वर्तमान परिप्रेक्ष्य के इन उपन्यासों की सबसे बड़ी जिम्मेदारी

यही थी कि वे जिन पूर्ववर्ती परिदृश्यों व स्थितियों की आलोचना करते थे उसके समक्ष एक नया स्वरूप निर्मित कर सकें और बहुत हद तक इन्होंने किया भी। इस दौर के उपन्यासों के ऊपर सबसे बड़ी जिम्मेदारी यह भी थी कि ये भविष्य के प्रति एक मजबूत नींव की स्थापना करें, जैसा कि बहुत हद तक इसने किया भी।

इस समय के उपन्यासों ने उन सब चीजों को अपना बनाया जो इस समय घटित हो रहे थे। इतिहास के प्रति नई दृष्टि, जिसमें सबाल्टर्न के प्रति चर्चा तेजी से हुई। ग्रामीण परिस्थितियों में हो रहे बदलाव जिसको सामाजिक - सांस्कृतिक विघटन के रूप में देखा जाना चाहिए। मध्यवर्गीय स्थितियों में बदलाव के बाद उत्पन्न स्थितियां आदि ऐसे बहुत सारे सरोकार थे जो तत्कालीन समाज में घट रहे थे और हिन्दी उपन्यास ने बड़े ही मार्मिक तरीके से इसको अपना विषय बनाया। इस दौर के उपन्यासों की एक खासियत यह भी रही कि इनमें कलात्मक अस्वादिपरकता का अभाव देखा जा सकता है। कला के नाम पर यथार्थ की भाव - भूमि से विमुख हो जाना इस समय के उपन्यासों में नहीं देखा जा सकता। यथार्थ उपन्यास की सबसे बड़ी ताकत है और यह यथार्थ ही लोकतान्त्रिक स्थितियों को बनाए रखने के लिए मददगार भी है। परंतु ऐसा भी नहीं है कि इस समय के उपन्यासों में पूरा का पूरा यथार्थ आ ही जाता है। इस अर्धसामंती और विकासशील समाज की मानसिकता का थोड़ा बहुत प्रभाव तो पड़ता ही है क्योंकि ये अभी समाज से पूरी तरह मिटी नहीं हैं। फिर भी यथार्थ पहले की अपेक्षा दृढ़ ही हुआ है जिसका प्रभाव आगे के उपन्यासों में देखने को मिल सकता है। कम से कम इस दौर के उपन्यासों ने कलावाद और उत्तर आधुनिकता के अतिवादी खाल को अपने ऊपर नहीं ओढ़ा।

आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक-सांस्कृतिक परिदृश्य की यदि हम बात करें तो इक्कीसवीं सदी के प्रवेश द्वार का माहौल इकदम बदला सा प्रतीत हो रहा है। विदेशी ऋण के मकड़जाल में अपनी आर्थिक सम्प्रभुता को लगभग खो चुका, हमारा भारत उन ऋणदाताओं के इशारों पर नाचता-थिरकता, देश की साधारण जनता को उनकी भावी सुख समृद्धि के सपने दिखाता, उसे ठगता, गुमराह करता, जातिवादी विष और पृथक्तावाद की चुनौतियां, क्षेत्रीय दुराग्रह, हजार बाँहों वाला भ्रष्टाचार, अपराध और अपराधियों की राजनीति से लेकर समाज तक फैला एक समानान्तर तन्त्र जिससे सत्ताधारी समाज और आमजन के बीच की दूरियां लगातार बढ़ाती ही गईं।

यदि इस दौर के उपन्यासों को रचना और रचनाकारों की दृष्टि से देखा जाए तो भी यह एक समृद्ध दशक रहा है। विषय को दृढ़ता से प्रस्तुत करना इसकी विशेषता रही है। इस दशक में जहां कुछ पूर्व परिचित उपन्यासकारों ने अपनी रचनाओं को नए कलेवर के साथ प्रस्तुत किया वहीं कुछ ऐसे नए रचनाकार भी हुए प्रक्रिया व विषय दोनों के स्तर पर कुछ नया करने का प्रयत्न किया। जहां एक तरफ श्रीलाल शुक्ल, कृष्ण बलदेव वैद्य, कृष्णा सोबती, ऊषा प्रियंवदा, गिरिराज किशोर, हृदयेश आदि हैं तो दूसरी तरफ नीलाक्षी सिंह, महुआ माजी, पंकज सुबीर, कुणाल सिंह रणेन्द्र आदि हैं। इनके बीच की भी एक धारा है जो नई कहानी और समकालीन कहानी की प्रवृत्तियों के बाद उभरी और अभी तक अपनी जगह मजबूती से बनाए हये है। इनमें मृदुला गर्ग, नासिरा शर्मा, ममता कालिया, चित्रा मुद्गल, कामता नाथ, असगर वजहत, संजीव,

काशीनाथ सिंह, अब्दुल बिस्मिल्लाह, मंजूर एहतेशाम, दूधनाथ सिंह, मैत्रयी पुष्पा, प्रियंवद, अनामिका आदि हैं। इन सारे उपन्यासकारों ने पहले दशक की दृष्टि को बड़े ही साम्य तरीके से पाठकों के समक्ष रखा। यह केवल वर्तमान की स्थितियों को परखते ही नहीं अपितु भविष्य के प्रति उचित विमर्श भी स्थापित करते हैं। इन दशकों के उपन्यास अस्मिता के उभार और जन – विरोधी जीवन स्थितियों, सक्रिय एवं रचनात्मक प्रतिवाद की दृष्टि से भी सहज ही ध्यान आकृष्ट करते हैं।

उपन्यासों के जन्म होने के साथ ही इनकी आलोचना दृष्टि का भी जन्म हुआ। यह अलग बात है कि इसका कलेवर ठीक – ठीक आलोचकीय नहीं था। तत्कालीन समय से ही विभिन्न विद्वानों द्वारा इनकी रचना – प्रक्रिया, स्वरूप, कथ्य, शिल्प आदि पर चर्चाएँ होती रहीं। उपन्यास की विधिवत आलोचना का कार्य प्रेमचन्द के समकालीन आलोचकों – कालिदास कपूर, जनार्दन प्रसाद झा, हेमचन्द्र जोशी, अवध उपाध्याय आदि ने शुरू किया। शुक्ल जी को छोड़ दिया जाए तो कविता के शेष आलोचकों से उपन्यास के आलोचक न केवल अधिक जागरूक थे, वरन् साहित्य सम्बन्धी कई बुनियादी सवालों से जूझ रहे थे। संयोग से आचार्य शुक्ल कविता के आलोचक थे और उन्होंने उपन्यास तथा उपन्यास की आलोचना को विशेष महत्वा नहीं दिया। इससे उपन्यास की आलोचना को झटका लगा जिससे औपन्यासिक आलोचना आज तक उबरने का प्रयास कर रही है। परंतु ऐसा भी नहीं है कि शुक्ल जी इस बात को लेकर एकदम मौन थे। उन्होंने अपने समकालीन उपन्यासों पर परिचयात्मक विवरण तो प्रस्तुत किया ही है। ऐसी ही कुछ स्थितियाँ हजारी प्रसाद द्विवेदी के साथ भी रही हैं। इन्होंने कथा क्षेत्र में आए बदलाव जिसमें उपन्यास की व्यापकता शामिल है, को केंद्र में रखकर देखा। उपन्यास आलोचना पर आगे चलकर जो सबसे महत्वपूर्ण नाम दिखाई पड़ता है वह है राम विलास शर्मा का, जिन्होंने अपने दौर के उपन्यासों को नजदीक से देखा। प्रेमचन्द के उपन्यासों पर इनके द्वारा की गई चर्चा अत्यंत ही महत्वपूर्ण है। इनपर इनके द्वारा डी गई स्थापनाएं आज तक प्रयोग की जाती हैं। नवजागरण और खड़ी बोली हिंदी के विकास के साथ – साथ जब उपन्यास विधा आरम्भ होती है तो उस दौरान के उपन्यासों पर इनके द्वारा की गई चर्चा भी महत्वपूर्ण है। राम विलास शर्मा के द्वारा जब प्रगतिशील आलोचना दृष्टि ज्यादा साफ़ हुई तो उसका असर उपन्यासों की आलोचना दृष्टि पर भी पड़ा। प्रगतिशील आलोचकों ने उपन्यास में चित्रित सामाजिक जीवन का विश्लेषण किया या उपन्यास में चित्रित जीवन की प्रगतिशीलता को जांचा – परखा या उसके सामाजिक प्रभाव की परीक्षा की। इसी दृष्टि के आधार पर उपन्यासों की आलोचना का क्रम आगे बढ़ता रहा। राजेंद्र यादव ने अठारह उपन्यासों की समीक्षाएं लिखी, कुंवर नारायण ने 'झूठा सच' उपन्यास में कवि दृष्टि का अभाव लक्षित किया, निर्मला जैन ने 'आपकी बंटी' उपन्यास के मर्म का उद्घाटन किया। प्रेमचन्द की औपन्यासिक कला और दृष्टि को लेकर नलिनी विलोचन शर्मा ने भी महत्वपूर्ण बातें की हैं। ये गोदान को एक संपूर्ण उपन्यास के दर्जे तक ले जाते हैं। इसके अलावा के प्रेमचन्द के अन्य समकालीन उपन्यासों पर भी चर्चा करते हैं। उनकी दृष्टि में तत्कालीन औपन्यासिक प्रवृत्ति ज्यादा महत्वपूर्ण रूप में देखी जाती है। औपन्यासिक दृष्टि को लेकर नामवर सिंह के द्वारा की गई आलोचना भी औपन्यासिक आलोचना को एक कदम आगे बढ़ाती है। सुनीता, त्यागपत्र, शेखर : एक जीवनी और नदी के द्वीप जैसे उपन्यासों की आलोचना करते हुए वे इनके नकारात्मक पहलुओं पर भी विशेष चर्चा करते हैं। नामवर सिंह जीवन व समाज की समस्याओं व उसके उपन्यास में चित्रण होने को लेकर सजग हैं। समस्या चाहे जितनी छोटी हो परंतु व्यापक रूप से उपस्थित की जाने पर बड़ी हो जाती है। किसी उपन्यास की व्यापकता इस बात में है कि वह जीवन की छोटी से छोटी समस्या को कितने बड़े परिवेश में और किस स्तर पर उपस्थित करता है।

समकालीन उपन्यास आलोचक जो कि पिछली सदी के अंतिम दशकों और 21वीं सदी के पहले दशक में उपन्यास आलोचना के द्वारा अपने समय को ज्यादा नजदीक से देखते हैं। इस समय के आलोचकों ने उपन्यास की बदली प्रवृत्तियों के आधार पर

आलोचना में नई दृष्टि लाने का प्रयत्न किया। उपन्यासों का इतिहास लिखने की दृष्टि से गोपाल राय और राम दरश मिश्र ने उपन्यासों पर विस्तृत चर्चा की है। यह अलग बात है कि अपनी आलोचनात्मक पुस्तकों में निश्चित सीमा के कारण इधर के दशकों पर विस्तृत विवेचना नहीं हो पाई है। ऐसी ही कुछ स्थितियाँ विजय मोहन सिंह के साथ भी हैं, प् उपन्यास आलोचना की दृष्टि से ये एक प्रमुख आलोचक हैं। अपने समय के उपन्यासों को प्रवृत्तिगत आधार पर उनके द्वारा जो विवेचना की गई है वह अत्यंत ही महत्वपूर्ण है। इधर के कुछ आलोचकों में मधुरेश, वीरेन्द्र यादव, वैभव सिंह, एन। मोहनन, शंभुनाथ आदि को लिया जा सकता है जिनकी औपन्यासिक दृष्टि ज्यादा स्पष्ट दिखाई पड़ती है। इस दौर में जिन विषयों पर चर्चा विशेष रूप से की गई उनमें सबाल्टर्न स्थितियाँ, विमर्श, नई आर्थिक नीति के बाद बदली स्थितियाँ आदि ऐसे कुछ ज्यादा प्रमुख तत्व हैं जो आलोचना के केंद्र में रही।

संदर्भ

1. सिंह, विजय बहादुर, समकालीन हिंदी उपन्यास, समय और संवेदना, वाणी प्रकाशन 21-ए दरियागंज, नई दिल्ली
2. रामबक्ष, समकालीन हिंदी आलोचक और आलोचना, हरियाणा साहित्य अकादमी, चंडीगढ़, प्रथम संस्करण 1991
3. जोशी, ज्योतिष, आलोचना की छवियाँ, मैत्रेय पब्लिकेशन, नई दिल्ली, संस्करण 2001
4. मिश्र, राम दरश, हिंदी उपन्यास एक अंतर्गता, राजकमल प्रकाशन, दूसरी आवृत्ति 2008
5. राय, गोपाल, हिन्दी उपन्यास का इतिहास, राजकमल प्रकाशन, पहली आवृत्ति 2009
6. सिंह, नामवर, आधुनिक हिन्दी उपन्यास : भाग -2 (संपादित), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण 2010
7. जोशी, ज्योतिष, उपन्यास की समकालीनता, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, पहला संस्करण 2007
8. यादव, वीरेन्द्र, उपन्यास और वर्चस्व की सत्ता, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2010
9. रणेन्द्र, ग्लोबल गाँव का देवता, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2009
10. अपूर्वानंद, साहित्य का एकांत, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2008
11. वाट, ऑयन, उपन्यास का उदय(अनु०- डॉ. धर्मपाल सरीन) हरियाणा साहित्य अकादमी, चंडीगढ़, द्वितीय संस्करण 1990
12. मधुरेश, हिंदी उपन्यास का विकास, सुमित प्रकाशन इलाहाबाद, संस्करण 2011
13. मोहनन, एन०, समकालीन हिंदी उपन्यास, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2011
14. सिंहल, डॉ. शशिभूषण, समकालीन हिंदी उपन्यास (1990 – 2010), हरियाणा ग्रंथ अकादमी, पंचकूला, प्रथम संस्करण 2012
15. सिंह, वैभव, भारतीय उपन्यास और आधुनिकता, आधार प्रकाशन, पंचकूला, प्रथम संस्करण 2012
16. सांकृत, सत्यकेतु, हिन्दी कथा साहित्य : एक दृष्टि, राधाकृष्ण, पहला संस्करण 2013
17. अनहद (पत्रिका), संतोष कुमार चतुर्वेदी (संपादक), लेख – शताब्दी का पहला दशक और उपन्यास, मधुरेश, वर्ष – 2, अंक – 2, जनवरी 2012